अब और तब

पतरस बुख़ारी

(यह एक हास्य निबंध है। कथावाचक संभवतः उसी कॉलेज में प्रोफ़ेसर है, जिससे उसने स्वंय शिक्षा प्राप्त की थी। वह एक बहुत प्रतिष्ठित प्रोफ़ेसर है क्योंकि उसको जलसों में अध्यक्षता के लिए बुलाया जाता है, और कॉलेज की पत्रिका के संपादक महोदय उससे पत्रिका के लिए लेख लिखने का आग्रह करते रहते हैं। कथावाचक इस निबंध में अपने मौजूदा जीवन (अब) की तुलना अपने छात्र-जीवन के दिनों (तब) से कर रहा है। यह निबंध दरअसल लेखक के निजी जीवन के अनुभवों की एक झलक मालूम होता है।---अनुवादक)

***

जब रोग बहुत पुराना हो जाए और स्वास्थ्य प्राप्त करने की कोई उम्मीद बाक़ी न रहे तो ज़िंदगी की सारी खुशियाँ सीमित होकर बस यहीं तक रह जाती हैं कि चारपाई के सिरहाने मेज़ पर जो अंगूर का गुच्छा रखा है उसके चंद दाने खा लिए, महीने-दो-महीने के बाद कोठे पर स्नान कर लिया या कभ-कभी नाखुन तरशवा लिए।

मुझे कॉलेज का रोग लगे हुए अब कई वर्ष हो चुके हैं। जवानी का रंगीन ज़माना परीक्षाओं में उत्तर लिखते-लिखते गुज़र गया। और अब जीवन के जो दो-चार दिन बाक़ी हैं वो प्रश्न बनाते-बनाते बीत जाऐंगे। एम.ए. की परीक्षा मानो रोग का संकटकाल था। विश्वास था कि इसके बाद या रोग न रहेगा या हम न रहेंगे। सो रोग तो बदस्तूर बाक़ी है और हम.....*हर-चंद कहें कि हैं, नहीं हैं*[i]। छात्र-जीवन का ज़माना बेफ़िक्री का ज़माना था। नर्म-नर्म गदेलों पर गुज़रा, मानो ऐश के बिस्तर पर लेटा था। अब तो शय्या-ग्रस्त हूँ। अब ऐश सिर्फ़ इस क़दर नसीब है कि अंगूर खा लिया। स्नान कर लिया। नाखुन तरशवा लिए।

सारी दौड़-धूप लाइब्रेरी के एक कमरे और स्टाफ़ के एक डरबे तक सीमित है और दोनों के ठीक बीच का हर मोड़ एक कमीनगाह मालूम होता है।

कभी रावी[ii] से बहुत दिलचस्पी थी। रोज़ाना तड़के सुबह, उसका पाठ किया करता था। अब उसके संपादक साहब से मिलते हुए डरता हूँ कि कहीं-न-कहीं स्वार्थपूर्ण सलाम खींच मारेंगे। हाल में से गुज़रना क़यामत है। वहम का यह हाल है कि हर खंभे के पीछे एक संपादक छिपा हुआ मालूम होता है।

---

[i] *हाँ खाइयो मत फ़रेब-ए-हस्ती // हर चंद कहें कि है नहीं है (मिर्ज़ा ग़ालिब)*

[ii] *रावी: गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर से निकलने वाली उर्दू साहित्य की प्रतिष्ठित पत्रिका। (अनु.)*

कॉलेज के जलसों में अपनी बदज़बानी से बहुत हंगामे किए। जलसे का अध्यक्ष बनने से हमेशा घबराया करता हूँ कि यह '*कुत्ते के मुँह में रोटी का टुकड़ा डाल देना बेहतर है*' वाला मामला है। अब जब कभी जलसे का सुन पाता हूँ एक ठंडी सी दुर्बलता शरीर पर छा जाती है। जानता हूँ कि अध्यक्ष की कुर्सी की सूली पर चढ़ना होगा और सूली भी ऐसी कि अनल-हक़[1] का नारा नहीं लगा सकता।

माननीय क़ाज़ी साहब ने अगले दिन कॉलेज में एक मुशायरा किया। मुझसे बदगुमानी इतनी कि मुझे अपने ठीक सामने एक नुमायाँ और बुलंद मुक़ाम पर बिठा दिया और मेरी हर हरकत पर निगाह रखी। मेरे इर्द-गिर्द महफ़िल गर्म थी और मैं इसमें कंचनचंगा की तरह अपने शिखर पर जमा बैठा था।

जिस दिन कॉलेज में छुट्टी हुआ करती मुझ पर उदासी सी छा जाती। जानता कि आज के दिन लुंगीधारी, तौलिया-वाहक, साबुन-वादी हस्तियाँ दिन के बारह एक बजे तक नज़र आती रहेंगी। दिन-भर लोग गन्ने चूस-चूसकर जगह-जगह पर खोई के ढेर लगा देंगे, जो धीरे-धीरे पुरातात्विक अवशेषों का सा मटियाला रंग धारण करलेंगे। जहाँ किसी को एक कुर्सी और स्टूल उपलब्ध हो गया वहीं खाना मँगवा लेगा और खाना खा चुकने पर कव्वों और चीलों की एक बस्ती आबाद करता जाएगा ताकि दुनिया में नाम बरक़रार रहे।

अब यह हाल है कि महीनों से छुट्टी की ताक में रहता हूँ। जानता हूँ कि अगर इस छुट्टी के दिन बाल न कटवाए तो फिर बात गर्मी-की छुट्टियों पर जा पड़ेगी। मिर्ज़ा साहब से अपनी किताब वापस न लाया तो वे निसंकोच हज़म कर जाएँगे। मछली के शिकार को न गया तो फिर उम्र भर ज़िंदा मछली देखनी नसीब न होगी।

अब तो दिलचस्पी के लिए सिर्फ़ ये बातें रह गई हैं कि फ़ोर्थ ईयर की हाज़िरी लगाने लगता हूँ तो सोचता हूँ कि इस दरवाज़े के पास जो नौजवान काली टोपी पहने बैठे हैं, और उस दरवाज़े के पास जो नौजवान सफ़ेद पगड़ी पहने बैठे हैं, हाज़िरी ख़त्म होने तक ये दोनों जादू के चमत्कार से लुप्त हो जाएँगे और फिर उनमें से एक साहब तो हॉल में प्रकट होंगे और दूसरे भगत की दुकान में दूध पीते दिखाई देंगे। आजकल के ज़माने में ऐसी नज़रबंदी का खेल कम देखने में आता है। या महान कलाकार के करतब का तमाशा देखता हूँ जो ठीक लेक्चर के दौरान में खांसता-खांसता अचानक उठ खड़ा होता है और बीमारों की तरह दरवाज़े तक चलकर वहाँ से ऐसा भागता है कि फिर हफ़्तों सुराग़ नहीं मिलता। या उन कलाकारों को दाद देता हूँ जो रोज़ाना देर से आते हैं और यह कहकर अपनी हाज़िरी लगवा लेते हैं कि साहब ग़रीबख़ाना बहुत दूर है। जानता हूँ कि दौलतख़ाना हॉस्टल की पहली मंज़िल पर है, लेकिन मुँह से कुछ नहीं कहता। मेरी बात पर यक़ीन उन्हें भला कैसे आएगा। और कभी एक दो मिनट को फ़ुर्सत नसीब हो तो दिल बहलाने के लिए यह सवाल काफ़ी है कि हॉल की घड़ी मीनार की घड़ी से तीन मिनट पीछे है। दफ़्तर की घड़ी हॉल की घड़ी से सात मिनट आगे है। चपरासी ने सुबह दूसरी घंटी मीनार के घड़ियाल से पाँच मिनट पहले बजाई और तीसरी घंटी हॉल की घड़ी से नौ मिनट पहले, तो चक्रवृद्धि व्याज के सूत्र से गणना करके बताओ कि किसका सिर फोड़ा जाए।

---

[1] *नवीं सदी के सूफ़ी मंसूर की ओर संकेत है जो मस्ती में आकर अनल-हक़ (मैं सत्य हूँ) का नारा मारता था जिसके कारण उलेमा ने कुफ़्र बकने के आरोप में उसको फाँसी दिलवा दी थी। "अनलहक़" रूढ़ीवाद से विरोध का प्रतीक बन चुका है। (अनु.)*

वही मैंने कहा न कि अंगूर खा लिया, स्नान कर लिया, नाख़ुन तरशवा लिए।
दिल ने दुनिया नई बना डाली
और हमें आज तक ख़बर न हुई।

(रावी – 1929)

अनुवादक : डॉ. आफ़ताब अहमद
व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क